''वामन विजयम्'' का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

*डॉ. बंशी धर रावत

शोध सारांश

संस्कृत नाटक : उद्‌भव और विकास

(अ) पाश्चात्य मत

1. डॉ. रिजवे भारत में नाटकों की उत्पत्ति वीर पूजा से मानते है।
2. भारतीय नाटकों में 'सूत्रधार' शब्द का प्रयोग देखकर उसका अर्थ ' डोरी पकडकर पुतली नाचने वाला व्यक्ति ' समझते हुये डॉ. पिशेल नाटक की उत्पत्ति पुत्तलिका नृत्य से मानते है।
3. डॉ. कीथ के अनुसार प्राकृतिक परिवर्तनों को सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत करने से ही नाटकों का जन्म हुआ।
4. डॉ. पिशेल, डॉ. ल्यूडर्स और डॉ. कानो आदि विद्वान नाटकों की उत्पत्ति छाया नाटकों से मानते है।
5. प्रो. हिलब्रेण्ट तथा स्टेनकानों नाटकों की उत्पत्ति स्वांग से मानते हैं।
6. कुछ विद्वान संस्कृत की 'यवनिक' का सम्बन्ध 'यवन' (यूनान) से जोड़कर भारतीय नाटकों की उत्पत्ति यूनान से मानते हैं।

(ब) भारतीय मत (सिध्दान्त मत)

वेदों में ही नाटक के बीच पाये जाते हैं। सभी नाटकीय तत्त्वों को वेद में देखा जा सकता हैं, जैसे ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में यम–यमी संवाद, ऊर्वशी–पुकरवा संवाद, सरमा–पणि संवाद, सामवेद से संगीतत्व की सत्ता, यजुर्वेद में धार्मिक कृत्यों के अवसर, नत्य विधान आदि।

रामायण और महाभारत में रंगशाला, नट कुशीलव आदि शब्दों के प्रयोग से भारतीय नाट्य कला की प्राचीनता द्योतक होती है।

पाणिनी के परामर्श शिलालिभ्यां भिक्षु–नट सूत्रयों (4/3/110) तथा कर्मन्द कृशाश्वादिनीः (4/3/111) सूत्र से सिद्ध होता है कि पाणिनि से पहले शिलाली और कृशाश्व दो आचार्य हो चुके थे, जिन्होने नट सूत्र (नाट्यशास्त्र) का प्रवचन किया था। अर्थात भारतीय नाट्य कला पूर्ण विकसित हो चुकी थी।

पतंजलि ने महाभाष्य (3/2/111) में कंसवध और 'बलिबन्ध' नामक दो नाटकों का स्पष्ट उल्लेख किया है। हरिवंश में रामायण की कथा के अभिनय का उल्लेख देखा जाता है।

मगधराज बिम्बसार के नागराज का सम्मान करने कि लिए नाटक का अभिनय कराया था, ऐसा इतिहास से ज्ञात होता है।

'नाट्य शास्त्र' में भरत मुनि ने नाटक के आविर्भाव और उसके उद्देश्य के विषय में एक अत्यन्त मनोंरजक कथा का उल्लेख किया है। उसके अनुसार इन्द्रादि देवताओं के अनुरोध पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ लेकर सामवेद से गान लेकर, यजुर्वेद से अभिनय लेकर नाट्यवेद नामक पंचम वेद की रचना कीं।

"जग्राह पाठयंमृविरात सामदो गीतमेव च

यजुर्वेदारभिनमान् रजानाकविणादियि ।।

लेखक परिचय

कवि विश्वनाथ मिश्र

'वामन विजयम्' एकांकी नाटक के प्रणेता पं. विश्वनाथ मिश्र का जन्म 15 जून 1930 को बिहार प्रान्त के सिवान जिला के अगेया गांव में श्री रामकेशव मिश्र के घर में हुआ।

शिक्षा

पं. मिश्र जी की प्रारम्भिक शिक्षा बिहार में ही हुई। उनकी उच्च शिक्षा बनारस में हुई तथा वहाँ राजकीय संस्कृत कॉलेज, वाराणसी से उन्होने व्याकरणाचार्य तथा वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय से साहित्याचार्य की परीक्षा प्रथम

श्रेणी से उत्तीर्ण की। गोरखपुर विश्वविद्यालय से उन्होनें स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की।

अध्यापन अनुभव

पं. मिश्र बाल्यकाल से ही कठोर परिश्रमी एवं स्वाध्यायी शील थे, अतः प्राचीन पद्धति एवं नवीन पद्धति से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे तुरन्त अध्यापन कार्य में संलग्न हो गये। सर्वप्रथम 1957 से 1960 तक उन्होने अग्रवाल संस्कृत कॉलेज, वाराणसी में प्राध्यापक पद पर कार्य किया, तत्पश्चात् 1960 से 1963 तक राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, डाल्टन गंज (बिहार) में अध्यापन कार्य किया। 1963 के उत्तरार्द्ध में वे राजस्थान आ गये तथा 1963 से 1988 तक राजकीय संस्कृत कॉलेज, बीकानेर में उन्होनें अध्यापन तथा प्राचार्य पद पर कार्य किया तदनन्तर लगभग साढे पाँच वर्ष तक जैन विश्वभारत, लाडनूँ में जैन दर्शन के रीडर तथा अध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहे। 3 वर्ष तक राजस्थान विश्वविद्यालय के संस्कृत संकाय के अधिष्ठाता के रूप में उन्होने कार्य किया ।

कृतित्व

पं. विश्वनाथ मिश्र बहुमुखी प्रतिभा के बहुचर्चित, बहुश्रुत विद्वान् है। सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ 'वामन विजयम्' लिखा। यह एक संस्क्त एकांकी नाटक है। 'कलि कौतुकम्' नामक संस्कृत एकांकी नाटक भी इनके द्वारा लिखा गया है। उन्होने 'परिभाष्येन्दुशेखर की सुबोधिनी' हिन्दी व्याख्या, लघु शब्देन्दु शेखन की सुबोधिनी, भारती पत्रिका (संस्कृत मासिक) में लेख, प्रौढ़ निबन्ध सौरभम् नामक पुस्तक लिखी।

अन्य गतिविधियाँ

पं. मिश्र ने राजस्थान संस्कृत अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन किया। अतिथि प्रोफेसर के रूप में अनेक संस्थानों व विश्वविद्यालयों में भाषण, अध्यापन व शोध कार्य का निर्देशन किया। वे 1978 में राजस्थान संस्कृत परिषद तथा 1989 में राजस्थान सरकार द्वारा सम्मानित हुये।

नाटक का सारांश

विश्वनाथ मिश्र द्वारा रचित नाटक दश दृश्यों में विभक्त है। संस्कृत सहित्य में उपलब्ध नाटकों में भिन्न परम्परा में यह नाटक लिखा गया है। सामान्यतः नाटक अनेक अंगों में विभजित होते हैं, जो लघु एकांकी हैं, उनका समस्त दृश्य भाग

एक ही पर्दे पर एक साथ दिखाया जाता है, परन्तु 'वामन विजयम्' को लेखक ने अनेक दृश्य में दिखाते हुये भी एकांकी ही माना है। इस नाटक में भगवान विष्णु के वामनावतार का वर्णन है।

परिचय

सामान्यतः नाटकों का आरम्भ नान्दी पाठ से होता है, जिसमे संस्कृत के विभिन्न छन्दों में पद्य लिखे होते हैं। 'वामन विजयम्' का प्रथम दृश्य मंगल सूचक तो है और इसमें नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया गया है, परन्तु इस दृश्य वृषभध्वज शिव की स्तुति सामूहिक गान के द्वारा रोचक ढ़ंग से की गई है। तीन चरणों में लिखा गया यह रोचक गीत शिव के सम्पूर्ण रूप को प्रस्तुत करने वाला है।

दूसरे दृश्य में आर्य देश भारत का स्तुति गान अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से सूत्रधार के मुख से करवाया गया है। यह देश संगम भूमि में सबको जीतने वाला, धर्म का रक्षक, विद्वानों का आश्रय दाता, मंगलकारी, सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त आर्य देश है।

तृतीय दृश्य में बलि उसके सेनापति तथा मन्त्रियों का वार्तालाप है तथा गुरूभक्ति का अनुपम, उपदेश दिया गया है, गुरू को साक्षात् बह्म, विष्णु, महेश्वर बताया गया है। बलि के गुरू शुक्र की महिमा बताई गई है और शुक्र अपने शिष्य बलि को उपदेश देता है पृथ्वी का भोग वीर ही करता है–

"वीरास्तपन्ति तेजोभिः वीरात् बिभ्यति जन्तवः।

वीरेण शास्यते लोको वीर भोग्या वसुन्धराः।।"

चतुर्थ दृश्य में गुरू के द्वारा किये जा रहे विश्वजित् यज्ञ का अद्भूत वर्णन है। यज्ञ की पूर्णता दान के द्वारा बताई गई है। दान की महिमा इन शब्दों में वर्णित है–

नास्ति दान समं कार्यं नास्ति दान समं तपः।

नास्ति दान समं सत्यं यज्ञे दानं विशिष्यते।।

पंचम दृश्य में गुरू ब्रहस्पति के पास इन्द्रादि देवताओं का जाना और गुरू के साथ उनकी बातचीत का वर्णन हैं।

षष्ठ दृश्य में बलि की राज्य सभा में विजयोत्सव का वर्णन है। यहाँ कवि ने एक सुन्दर गीत के द्वारा बलि की वन्दना का भव्य दृश्य प्रस्तुत किया है।

सप्तम दृश्य में बलि के द्वारा पराजित देवताओं के द्वारा भगवान का स्तवन और भगवान् के प्रकट होने का वर्णन है। भगवत् स्तुति में भी कवि ने सुन्दर गीत का प्रयोग किया है।

अष्टम दृश्य में महर्षि कश्यप को ध्यान में अवस्थित ब्रह्मानन्द में लीन दिखाया गया है। कश्यप, इन्द्र सविता, मरीचि और वशिष्ठ की बातचीत में देवों के द्वारा सम्मानित एवं पूजित वामन का बलि की ओर प्रस्थान वर्णित है।

नवम दृश्य में बलि की सभा में वामन के प्रवेश के सूचना मिलती है और परिणाम स्वरूप सभासदों के घबराने, पृथ्वी काँपने और आकाश में दुभित होने का सूचना है।

गुरु शुक्र बलि को निर्देश देते है कि देवता लोग छल, बल से तुम्हें परास्त करना चाह रहें है अतः कोई भी किसी रूप में तुमसे कोई विशेष वस्तु मांगे तो मत देना। परन्तु क्योंकि बलि ने सर्वस्व दान की प्रतिज्ञा कर ली थी, इसलिए वह गुरू के वचन को पूर्णतः मानने में असमर्थ व्यक्त करता है। अतः गुरु रूष्ट होकर कहते है कि क्योंकि तू गुरु के आदेश की उपेक्षा कर रहा है, इसलिए तू इसका दुष्परिणाम अवश्य भोगेगा।

दशम दृश्य में बलि की सभा में वामन को दिखाया गया हैं वामन को देखकर सभासद उसके विषय में नई–नई कल्पना करते हैं। कोई उसको सूर्य समझता है तो कोई उसको उससे भी बढ़कर

प्रचण्ड तेज की राशि समझता है।

वामन केवल तीन कदम भूमि की याचना करता है। वामन बलि के सम्पूर्ण राज्य को केवल दो कदमों में ही नाप लेते है। तृतीय पाद के लिए पृथ्वी न होने से बलि अपने सिर पर ही पैर रखने को कहता है।

भाषा एवं रस

इस लघु नाटक की भाषा रोचक, सरल, सरस एवं प्रवाहमयी है। इसमे वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है। नाटक की यह विशेषता यह है कि इसकी भाषा पात्रों के अनुकुल है। जिस वस्तु से व्यक्ति का वर्णन है उसका चित्र सामने उपस्थित हो जाता है।

तृतीय दृश्य में स्रग्धरा छन्द के माध्यम से प्रभावशाली भाषा में भारत देश का भव्य वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसी दृश्य में गुरू की अद्भुत महिमा, सरल, सरस, किन्तु अत्यन्त प्रभावशली भाषा में की गई है। गुरू के वाक्य को अमोध कहा गया है। गुरू की भक्ति को विशाल नभ बताया गया है।

नभो विशालं गुरू भक्तिरस्ति चेत्
तदा सयुरुद्यान सभाः ह्यधीतिनः।
गुरोवर्चः कल्पतरु प्रसूयते सदा
सुधयाः खलु बीजद्भुतम्।।

बलि के वर्णन में वीर रस की झलक मिलती है तो शिव और नारायण के वर्णन में भक्ति रस की झलक दिखाई देती है।

छन्द अलंकार

भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए तथा काव्य को सरस बनाने के लिए कवि ने विविध छन्द अलंकारो का प्रयोग किया है। भारत महिमा वर्णन है तो गुरु भक्ति वर्णन में उपजाति छन्द के दर्शन होते हैं।

अनुष्टुप छन्द तो पदे–पदे दिखाई देता है। कवि ने परम्परा से हटते हुए चतुर्थ दृश्य में हिन्दी में प्रचलित हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया है और उसके माध्यम से यज्ञ दान की महिमा बताने के साथ शिवि और हरिश्चन्द्र की महिमा गाई गई है। साथ ही प्रथम, षष्ठ एवं सप्तम दृश्य में रोचक गीतों को प्रस्तुत करके नवीन परम्परा का प्रवर्तन किया है।

अलंकारो में उपमा, रूपक, अनुप्रास, अति श्योक्ति, व्यतिरेक आदि अलंकारों का भव्य रूप सामने आता है। अनुप्रास का एक सुन्दर उदाहरण –

नारायणं निराकारं नरवीरम् नरोत्तम।

नृसिंहः नागनाथः च तं वन्दे परमेश्वरम्।।

व्यतिरेकालंकार का प्रयोग गुरु भक्ति वाले पद्यों में मिलता है। उपमा भी पद–पद पर मिलता है।

परिमाण

इस नाटक में वामन केवल तीन कदम भूमि की याचना करता है। वामन बलि के सम्पूर्ण राज्य को केवल दो कदमों में ही नाप लेता है। तृतीय पाद के लिए पृथ्वी न होने पर बलि अपने सिर पर ही पैर रखने को कहता है। कहा भी है –

'अति सर्वत्र वर्जयेत्'

*व्याख्याता
संस्कृत विभाग
स्व. राजेश पायलट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदीकुई (दौसा)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नाट्य शास्त्र – भरतमुनि
2. अभिनव नाट्य शास्त्र –पं. सीताराम चतुर्वेदी
3. आचार्य दण्डी एवं संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास – डॉ. जयशंकर त्रिपाठी
4. कवि और काव्य – पं. बलदेव उपाध्याय
5. नाट्य संस्कृति सुध – डॉ. रमेश चन्द्र शुक्ल, 1968
6. दशरूपक – धनंजय, अनुवादक डॉ. भोला शंकर व्यास, 1967
7. पुराण विमर्श – पं. बलदेव उपाध्याय

8. नाट्य शास्त्र (भाग 1–4) भरतमुनि अभिनवगुप्ताचार्य, टीका सहित, 1934
9. संस्कृत नाटक – मूल लेखक डॉ. कीथ, अनु. डॉ. उदयभानु सिंह, 1965
10. संस्कृत काव्यकार – डॉ. हरिदत्त शास्त्री, 1962
11. संस्कृत नाटक समीक्षा – प्रो. इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र', 1960
12. संस्कृत सहित्य का इतिहास (भाग 1) – डॉ. मैक्डानल, अनु, चारु चन्द्र शास्त्री।
13. संस्कृत सहित्य का इतिहास – वरदराचार्य, अनु. डॉ. कपिल देव द्विवेदी, 1962
14. संस्कृत सहित्य की प्रवृत्तियाँ – डॉ. जय किशन खण्डेलवाल, 1969
15. दास इण्डिया डामा

पत्र–पत्रिकाएँ

1. स्वरमंगला (त्रैमासिक) राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
2. भारती (मासिक), जयपुर।
3. सागरिका – सागर विश्वविद्यालय, सागर।